Gmail econtent Of Arts <econtentofarts@gmail.com>

Economic Development:Third world Concerns.M A (4Semester),Anjani Kumar Ghosh, Political Science.

1 message

ANJANI GHOSH <anjanighosh51@gmail.com> Wed, Aug 26, 2020 at 2:57 PM
To: econtentofarts@gmail.com

थर्ड वर्ल्ड या 'तीसरी दुनिया' वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का एक बहुप्रचलित मुहावरा है । इसका प्रयोग सबसे पहले फ्रांसीसी लेखक एक्फ्रेड सोवी ने एक लेख में सन् 1952 में किया था । सोवी के अनुसार 'तीसरी दुनिया' उन अज्ञात और शोषित देशों का समूह है जिन्हें प्राय: तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और जो कुछ बनकर दिखाना चाहते हैं ।

प्रत्यक्षत: सोवी का संकेत उन अफ्रीकी-एशियाई देशों की तरफ था जो सदियों तक उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जकड़ में थे और जो अब अपनी गरीबी और पिछड़ेपन से उबरकर आधुनिकता एवं सम्पन्नता की ओर बढ़ना चाहते थे । बहरहाल 1955 में बाण्डुंग में हुए अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन के बाद इस विशेषण का प्रयोग यदा कदा होने लगा, खासकर चीन और चीन से प्रभावित कुछ अफ्रीकी-एशियाई देशों में ।

'तीसरी दुनिया' शब्दांश से आज जो अर्थ निकाला जाता है वह 1950 के अर्थ से एकदम भिन्न है । जब शीत-युद्ध अपनी चरम सीमा पर था 'तीसरे विश्व' का अर्थ उन तटस्थ या असंलग्न राष्ट्रों के झुण्ड से लिया जाता था जो न तो पश्चिमी शक्तियों (पहली दुनिया) से प्रतिबद्ध थे और न साम्यवादी गुट (दूसरी दुनिया) से प्रतिबद्ध थे ।

आज तथाकथित इन तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में कोई वैचारिक एकजुटता नहीं है जिससे किसी सामूहिक अवधारणा से उन्हें सम्बोधित किया जा सके । आज तो ये देश 'गरीबी' और 'पिछड़ेपन' के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं । अत : आज 'तीसरी दुनिया' शब्द का प्रयोग 'विकासशील राष्ट्रों' (Developing nations) या 'अल्प-विकसित राष्ट्रों' (Developed countries) के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।

कतिपय विद्वानों का मत है कि सोवियत संघ के विघटन एवं साम्यवाद के पतन के पश्चात् 'थर्ड वर्ल्ड' का मुहावरा अपनी सार्थकता खो चुका है । कुछ सीमा तक यह विचार ठीक है तथापि बदले परिप्रेक्ष्य में भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विश्लेषण तीसरी दुनिया के देशों के प्रसंग में करना एकदम साररहित भी प्रतीत नहीं होता । यहां 'तीसरी दुनिया' से हमारा स्पष्ट अभिप्राय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 'विकासशील देशों' की भूमिका का विश्लेषण करना है ।

तीसरे विश्व की अवधारणा:

20वीं शताब्दी के छठे दशक के आखिरी वर्षों में चीनी नेता माओत्सेतुंग और उनके अनुयायियों ने अपनी 'तीन दुनियाओं' की कल्पना प्रचारित की । इस कल्पना के अनुसार 'पहली दुनिया' में केवल दो

महाशक्तियां अमरीका और सोवियत संघ हैं ।

'दूसरी दुनिया' उन देशों से मिलकर बनी है, जिनका इन महाशक्तियों के साथ सैनिक अथवा व्यापक गठबन्धन है और 'तीसरी दुनिया' उन देशों का समूह है, जो कच्चा माल पैदा करते हैं, जो बड़े देशों के उपनिवेश थे तथा जो आधुनिक औद्योगीकरण से बहुत दूर हैं । इस परिभाषा के अनुसार सामान्यत: एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका क्षेत्र के वे नवोदित देश ही 'तीसरी दुनिया' की परिधि में आते हैं जो सदियों तक उपनिवेशवादी शोषण के शिकार रहे थे ।

तीसरे विश्व की अवधारणा को दो रूपों में देखा गया है: एक तो इन सभी राष्ट्रों की समस्याएं एक जैसी हैं तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा में कतिपय मुद्दों पर मतदान करते समय इन राष्ट्रों में एकजुटता देखी गयी है खासतौर से उपनिवेशवाद विरोधी मुद्दों के बारे में ।

अल्जीरियाई लेखक फैन्ट्रज फैनन ने 1961 में प्रकाशित अपनी कृति 'Les. Damnes. Delaterre' में भी 'तीसरी दुनिया' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अंग्रेजी अनुवाद सन् 1965 में "The Wretched of the World" शीर्षक से प्रकाशित हुआ ।

यह वह समय था जब एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में नये-नये राष्ट्रों का उदय हो रहा था । ऐसे राष्ट्र जो वर्षो से उपनिवेशवादी शोषण और विसंगतियों के शिकार थे अपनी स्वतन्त्रता की मांग और शोषण के विरोध के नारे पर संघर्ष कर रहे एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के इन राष्ट्रों को सम्बोधित करने के लिए फेनॉन ने 'तीसरी दुनिया' शब्द का प्रयोग किया । फेनॉन ने पूंजीवादी जगत को 'पहली दुनिया' और 'साम्यवादी जगत' को 'दूसरी दुनिया' का नाम दिया ।

'तीसरी दुनिया' को प्राय: 'विकास' के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है । इरविंग होरोविज ने इसी परिप्रेक्ष्य में एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक था विकास की तीन दुनियाएं' (Three Worlds of Developments) । वे विकास की पहली दुनिया में पश्चिमी यूरोप तथा अमरीका को लेते हैं ।

इस दुनिया की प्रमुख विशेषता है प्रतियोगी पूंजीवाद, जिसने 16वीं शताब्दी से सामन्तवाद को क्षीण करना प्रारम्भ कर दिया था । 16वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसे प्रगतिशील विश्व के अभ्युदय में सहायता दी जिसने सर्वत्र आधुनिकीकरण की छाप छोड़ दी ।

प्रोफेसर होरोविज दूसरी दुनिया के अन्तर्गत सोवियत संघ और उसके गुटीय राष्ट्रों को लेते हैं । जारों के शासनकाल में रूस की हालत आज के विकासशील राष्ट्रों के समतुल्य थी । 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति ने रूस को पूंजीवादी विकास मार्ग से विलग कर दिया और उसे नियोजित केन्द्रीभूत विकास के ढांचे में ढाल दिया ।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों ने सोवियत संघ के राजनीतिक-आर्थिक मॉडल को अपना लिया तथा चीन ने भी थोड़े-बहुत परिवर्तित रूप में इसी मॉडल को वरीयता दी । 'तीसरी दुनिया' एक नूतन तथ्य है । ये वे राष्ट्र हैं जो सदियों की उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्त हुए हैं और विकास के किसी मार्ग की खोज में हैं ।

एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के कई राष्ट्रों की विकास की समस्याएं लगभग एकसमान हैं, अत: उनमें समस्याओं और ध्येयों की एकजुटता की प्रवृत्ति पायी जाती है । उनका मुख्य ध्येय विकास है, अपने विकास हेतु वे पहली और दूसरी दुनिया के देशों से विचारधारा राजनीति और अर्थनीति उधार लेने में नहीं हिचकिचाते किन्तु पूरब एवं पश्चिम के शीत-युद्ध में असंलग्न रहना चाहते हैं ।

सर्वाधिक स्वीकृत धारणा के अनुसार- 'तीसरी दुनिया' में वे देश आते हैं, जो न तो आर्थिक दृष्टि से विकसित पूंजीवादी व्यवस्था वाले देशों में शामिल हैं और न पूर्णत: नियोजनबद्ध समाजवादी देशों की श्रेणी में आते हैं ।' थर्ड वर्ल्ड क्वार्टरली' (लन्दन) ने इसी कल्पना को पेश किया है – "लगभग 135 अफ्रीकी-एशियाई और दक्षिणी अमरीकी देश अपने को सामूहिक रूप से 'तीसरी दुनिया' कहते हैं । वे अपने को विकसित पूंजीवादी और केन्द्रीय नियोजित समाजवादी देशों से अलग रखकर अपनी पहचान स्थापित करते हैं ।"

'तीसरे विश्व' की अवधारणा एक मानसिक अवधारणा है न कि कोई ठोस राजनीतिक इकाई । वैसे तो संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके बाहर सामूहिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए अनेक बैठकें आयोजित की गयीं किन्तु अभी तक 'तीसरे विश्व' की कोई राजनीतिक इकाई अस्तित्व में नहीं आयी है ।

इन देशों में राजनीतिक विविधता और वैदेशिक नीति में इतनी अधिक भिन्नता है कि मात्र 'तीसरे विश्व' से सम्बन्धित मुद्दों जैसे- उपनिवेशवाद विरोध और विकास के अतिरिक्त किसी भी पहलू पर आम सहमति का अभाव पाया जाता है । यहां तक कि विकास के क्षेत्र में भी तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है ।

जैसा कि लेस्टर आर. ब्राउन ने लिखा है- "द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के निर्धन या अल्प-विकसित राष्ट्रों को सम्मिलित रूप से 'तीसरी दुनिया' कहा गया है । किन्तु आज यह शब्दांश अपना महत्व खोता जा रहा है । एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देश आज निर्धनता के घर नहीं रह गए हैं । इनमें बहुत-से राष्ट्रों ने आर्थिक और सामाजिक मोर्चो पर सफलता प्राप्त की है ।"

तथाकथित तीसरी दुनिया के कुछ देशों में पिछले दो दशकों में उल्लेखनीय आर्थिक विकास हुआ है, चाहे इसका कारण तेल निर्यात ही क्यों न रहा हो ? इससे विकास की दौड में अधिसंख्य देश पिछड़ गए हैं, और अब उन्हें 'चौथी दुनिया' (Fourth World) भी कहा जाने लगा है ।

चौथी दुनिया के ये देश आर्थिक और राजनीतिक संकट के भयावह दौर से गुजर रहे हैं । जनसंख्या विस्फोट, भुखमरी, आर्थिक विकास की धीमी रफ्तार, आर्थिक स्रोतों के अभाव में चौथी दुनिया के देशों के लिए तीसरी दुनिया के देशों का स्तर भी प्राप्त करना बड़ा मुश्किल लगता है ।

कतिपय विश्लेषकों का मत है कि यदि ऊर्जा संकट तथा खाद्य संकट की वर्तमान प्रवृत्ति बनी रही तो चौथी दुनिया के राष्ट्रों के लिए अस्तित्व का ही संकट उत्पन्न हो जाएगा । सातवें दशक के प्रारम्भ में

संयुक्त राष्ट्र दस्तावेजों में विश्व को तीन भागों में बांटा गया-विकसित निजी अर्थव्यवस्थाएं केन्द्रीकृत नियोजित अर्थव्यवस्थाएं और प्राथमिक माल उत्पादक विकासशील अर्थव्यवस्थाएं ।

तीसरी दुनिया को कच्चा माल उत्पादित करने वाली ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में देखा जाता है जिनमें निम्न औद्योगीकरण हुआ है, विकास दर कम है और प्रथम और द्वितीय विश्व की अर्थव्यवस्थाओं पर आश्रित है । इस प्रकार तीसरी दुनिया को आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया ।

डॉ. शिशिर गुप्ता के अनुसार, तीसरे विश्व के देशों की सामान्य विशेषताएं हैं: निर्धनता, अस्थिरता, नयापन, अश्वेत तथा दुर्बलता । आज विकसित देश धन और खुशहाली के टापू बनते जा रहे हैं लेकिन विकासशील देश गरीबी और दुःखों की डगर पर ही खड़े हैं ।

यदि हम नवम्बर, 2001 के पहले सप्ताह में प्रकाशित संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की ताजा रिपोर्ट को देखें तो पाते हैं कि विकासशील देशों में बढ़ती जनसंख्या कुपोषण, प्रदूषण एवं सामाजिक-आर्थिक असमानताओं का कारण बनती जा रही है ।

विश्व में धनवान और गरीब के बीच की दूरी घटने का नाम नहीं ले रही है । धनवान लोग जरूरत से ज्यादा अत्यावश्यक संसाधनों को बर्बाद कर रहे हैं । दूसरी ओर ऐसे लाखों करोड़ों लोग हैं जिन्हें इतना भी भोजन नहीं मिल रहा है कि वे जीवित रह सकें ।

विश्व की जनसंख्या पर किए गए संयुक्त राष्ट्र के दो अन्य अध्ययनों 'पद चिह्न और मील के पत्थर' तथा 'जनसंख्या और पर्यावरण परिवर्तन' हैं जिन्हें हाल ही में जारी किया गया है । इन रिपोर्टों के अनुसार विश्व में 80 करोड़ लोगों को आज भी भरपेट भोजन नसीब नहीं होता । यह जनसंख्या हिन्दुस्तान की बर्तमान आबादी के लगभग दो तिहाई है । यह विश्व गरीबों और अमीरों के बीच बटी है ।

यह तो पहले भी पता ही था, लेकिन इन रिपोर्टो के कुछ आंकड़े बेहद आक्रामक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं । सर्वेक्षण बताते हैं कि पृथ्वी पर 7 अरब से अधिक मनुष्य रहते हैं लेकिन इनमें से केवल 20 प्रतिशत मनुष्य ही पृथ्वी के 86 प्रतिशत संसाधनों का लाभ उठा रहे हैं । ये लोग यूरोप जापान उत्तरी अमरीका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में बसते हैं । शेष विश्व की अति निर्धन 20 प्रतिशत जनसंख्या सिर्फ दशमलव दो प्रतिशत संसाधनों पर आश्रित है ।

जहां विकसित देश वर्ष प्रति वर्ष समृद्ध हो रहे हैं, वहीं विकासशील देशों पर विदेशी ऋण बढ़ता जा रहा है । ऋणग्रस्त विकासशील देश आर्थिक-सामाजिक संकटों से त्रस्त हैं । भारत का विदेशी ऋण मार्च 2014 तक बढ़कर 440.6 बिलियन अमरीकी डॉलर पर पहुंच गया । लेकिन विश्व बैंक ने वर्तमान मूल्य पर आधारित ऋणग्रस्त विकासशील देशों की सूची में उसे अल्प रूप से ऋणग्रस्त देश बताया है ।

पाकिस्तान अब भी गम्भीर रूप से ऋणग्रस्त देशों की सूची में है । विश्व बैंक की सूची में विकासशील देशों को तीन श्रेणियों गम्भीर, साधारण व अल्प रूप से ऋणग्रस्त रखा गया है । विश्व बैंक ने पाकिस्तान के अलावा ब्राजील, अर्जेटाइना और इंडोनेशिया को गम्भीर रूप से ऋणग्रस्त देशों की सूची में रखा है । साधारण रूप से ऋणग्रस्त देशों में रूस परिसंघ, तुर्की, थाईलैण्ड, मलेशिया, फिलीपीन्स, वेनेजुएला और चिली को रखा गया है जबकि मैक्सिको, कोरिया, चीन, पोलैण्ड और भारत को अल्प ऋणग्रस्त की श्रेणी में रखा गया है ।

पिछले वर्ष विश्व बैंक ने भारत को साधारण ऋणग्रस्त विकासशील देशों की सूची में रखा था । विश्व बैंक ने तीन श्रेणियों की जो कसौटी बनाई है, उसके 'अनुसार जिन देशों का कुल ऋण निर्यात पर ऋण शोधन के वर्तमान मूल्य के 220 प्रतिशत और सकल राष्ट्रीय उत्पाद के परिप्रेक्ष्य में 80 प्रतिशत से अधिक है उन्हें गम्भीर रूप से ऋणग्रस्त की माना जाएगा ।

इसी तरह जिस देश का कुल ऋण, निर्यात ऋणों, शोधन के वर्तमान मूल्य के परिप्रेक्ष्य में 132 प्रतिशत और सकल राष्ट्रीय उत्पाद के परिप्रेक्ष्य में 48 प्रतिशत तक है उसे साधारण रूप से ऋणग्रस्त माना गया है । तीसरी श्रेणी में उन देशों को रखा गया है जिनका अनुपात इससे कम है ।

तीसरे विश्व के देशों की सामान्य विशेषताएं

आज जिस विश्व में हम रह रहे हैं उस विश्व के 4.5 अरब से अधिक लोग विकासशील देशों में रह रहे हैं । इस संख्या के एक-चौथाई को जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं जैसे शौचादि की भी सुविधा नहीं है, लगभग एक-तिहाई के लिए साफ पीने का पानी नहीं है एक-चौथाई के पास रहने के लिए मकान नहीं हैं, पांचवें हिस्से के पास चिकित्सीय सुविधाएं नहीं हैं, पांचवें हिस्से के बच्चे पांचवीं कक्षा से अधिक पढ़ नहीं सकते और इतने ही बच्चे भूखे-नंगे हैं । आज तीसरे विश्व के देशों की सामान्य विशेषता है-विकास के लिए संघर्ष ।

किन्तु इस आम विशेषता के अतिरिक्त उनमें निम्नलिखित सामान्य विशेषताएं भी दिखायी देती हैं:

1. जीविकोपार्जित कृषि एवं बागवानी प्रधान अर्थव्यवस्था:

तकनीकी ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान के अभाव में तीसरी दुनिया के ये अल्प-विकसित देश अधिकांशत: कृषि पर निर्भर हैं । यहां कृषि व्यवसाय नहीं बल्कि जीविकोपार्जन या बागवानी पर आधारित है । बढ़ती जनसंख्या का दबाव या कच्चे माल के निर्यात में ही सभी कृषक लगे हैं । विश्व जनसंख्या में 1.3 बिलियन कृषि पर निर्भर है जिसमें 1 बिलियन इन्हीं देशों में है । व्यावसायिक संरचना में असन्तुलन होने के कारण तथा कृषि पर निर्भरता अधिक होने से राष्ट्रीय आय में कमी होती है ।

2. निर्यातों पर आश्रित:

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अधिक निर्यात नुकसानदायक नहीं होते परन्तु यदि कच्चे माल का अधिकांश भाग विदेशों को जाता है और उसके बदले में उन्हें कम लाभ प्राप्त होता है तो आर्थिक विकास नहीं

बढ़ता । तीसरी दुनिया के देश अपने निर्यातों पर अधिक निर्भर रहते हैं । इन्हीं अल्प-विकसित देशों में निर्यात का राष्ट्रीय आय से अनुपात 20% है ।

यह समस्या तब और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जब निर्यातक देश एक या दो ही वस्तुओं का निर्यात करते हैं । मिस्र, इण्डोनेशिया, मलाया, श्रीलंका, अफ्रीकन क्षेत्र, लैटिन, अमरीका, आदि सभी तीसरी दुनिया के देश एक या दो वस्तुओं के निर्यात से ही अधिकांश विदेशी मुद्रा अर्जित करते है ।

निर्यातों पर अधिक आश्रित होने के कारण तथा विदेशी बाजारों की स्थितियों में निर्यात नियम, आदि से विभिन्न वस्तुओं की मांग में जब कभी उच्चावचन होते रहते हैं जिसका प्रभाव इन देशों की अर्थव्यवस्था में होता है । प्राथमिक वस्तुओं की विदेशों में मांग कम हो जाने के कारण इन देशों में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार पर प्रभाव पड़ता है । साथ ही सरकारी आय में भी अपेक्षाकृत परिवर्तन होते रहते हैं ।

3. असन्तुलित घटक:

उत्पादन में पूर्ण घटकों की गतिशीलता के कारण एक उद्योग से दूसरे उद्योग में सीमान्त प्रतिफल समान रहता है । गतिशील अर्थव्यवस्था में साधनों का अधिकतम उपभोग उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए मिल जाता है, परन्तु अल्प-विकसित देशों में उत्पादन के विभिन्न घटकों में अचलता देखी जाती है ।

उदाहरण के लिए- श्रमिक एक उद्योग से दूसरे उद्योग में नहीं जाना चाहते यद्यपि वर्तमान में उनका उत्पादन कुछ नहीं है । जाति-प्रथा, सामाजिक व संस्थागत विचार, पूंजी गतिशीलता तथा विनियोग उद्योग को प्रभावित करते हैं ।

4. जनसंख्या वृद्धि:

विकासशील देशों में जनाधिक्य है तथा जनसंख्या वृद्धि-दर विकसित देशों की अपेक्षा अधिक है । जनसंख्या में कमी से ही वास्तविक आय में वृद्धि हो सकती है । जनसंख्या वृद्धि कई आर्थिक कठिनाइयां उत्पन्न करती है ।

5. अस्थिर राजनीतिक व्यवस्थाएं:

तीसरे विश्व के देशों में लोकतन्त्र अभी तक अस्थायित्व के दौर से गुजर रहा है । इन देशों में राजनीतिक प्रक्रियाएं संक्रमण के दौर में होने के कारण संविधानों में लोकतन्त्र के आधार सुनिश्चित नहीं हो पाए हैं । संविधानों में बार-बार मौलिक संशोधन किए जाते है तथा एक मूल्य के स्थान पर दूसरा मूल्य आरोपित कर दिया जाता है । इन राज्यों का लोकतन्त्र समाजवादी लोकतन्त्र के नाम से पुकारा जाने लगा है ।

इन लोकतन्त्रों में राजनीतिक समाजों के मूल्य तो उदारवादी लोकतन्त्र की अवधारणा के समान स्वतन्त्रता राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोक- कल्याण की साधना के ही

हैं परन्तु साधनों की दृष्टि से समाजवादी लोकतन्त्र साम्यवादी विचारधारा के समीप लगते हैं, क्योंकि इन राज्यों में साम्यवादी संरचनाओं व संस्थागत व्यवस्थाओं के प्रति आस्था बलवती बनती जा रही है ।

6. करिश्माती नेतृत्व:

इन देशों में कार्यपालिका अध्यक्ष करिश्मे व चमत्कारिक व्यक्तित्व वाले नेता होते हैं । राष्ट्रीय आन्दोलनों के लम्बे कालों में ऐसे देव तुल्य नेता जनमानस में समा गए थे । इस कारण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ऐसे नेताओं के कार्यपालिका अध्यक्ष बनने पर उनको आदर व असाधारण प्रतिभा का प्रतीक ही नहीं वरन् राष्ट्र का पिता मान लिया गया था ।

जोमो केन्याता, सुकार्नो, बोर्गिबा, नासिर, नेहरू, ऐनक्रूमा, न्येरेरे, लुबुम्बा, शेख मुजीब, इत्यादि अनेक कार्यपालिका अध्यक्ष ऐसे ही अद्‌वितीय व्यक्तित्व के कारण लम्बी अवधि तक राजनीतिक व्यवस्थाओं पर छाए रहे । इन कार्यपालिका अध्यक्षों की शक्तियां असीमित रही हैं ।

7. विधायिका का ह्रास:

इन देशों में बहुल समाज परस्पर विरोधी व अधिकतर संघर्षशील शक्तियों के तनावों व खिंचावों से त्रस्त रहते हैं । राजनीतिक व्यवस्था में विधानमण्डल ऐसी विषम परिस्थितियों के कारण संयोजनकारी भूमिका निभाने में सर्वथा असफल रहते हैं । अत: कार्यपालिका अध्यक्ष तानाशाह की सी स्थिति में आ जाता है ।

8. एक दल प्रणाली:

इन देशों में प्रतियोगी दल प्रणाली आवश्यक सहिष्णुता के अभाव में अस्त-व्यस्त होते-होते एक दल पद्धति की परिस्थितियां उत्पन्न कर देती है । एक दल की स्थापना व उसका एकाधिकार कार्यपालिका की प्रवृत्ति में अन्तर ला देता है । इस प्रकार के दल का केवल दिखावा ही रहता है ।

कार्यपालिका अध्यक्ष अपनी सत्ता की वैधता के लिए चुनावों का ढोंग इसी दल के माध्यम से करने लगे; किन्तु सभी तीसरी दुनिया के राज्यों के बारे में यह सामान्यीकरण खरे नहीं उतरते हैं । अनेक राज्यों में स्वतन्त्रताएं व दल प्रतियोगिता की वास्तविक परिस्थितियां बनाए रखने के संस्थागत साधन उपलब्ध रहते हैं । मैक्सिको, भारत व श्रीलंका इसके उदाहरण हैं ।

संक्षेप में, तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में कार्यपालिका प्रतिमान अभी भी सुस्थिर नहीं हुए हैं । पुराने नेतृत्व के हटाने पर अनेक राज्यों में कार्यपालिका अध्यक्ष संस्थागत चयन प्रक्रिया की दृढ़ता के अभाव में, सामान्य ढंग से चुनकर नहीं आ पाता है और अधिकतर कार्यपालिका पद तानाशाहों के हाथ में चला जाता है । इस प्रकार तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में कार्यपालिका सामान्यतया नियन्त्रण मुक्त ही रहती है ।

व्यवस्थापिकाएं इन देशों में नाम से ही रह गयी हैं । न्यायपालिका पर महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर कार्यपालिका, शक्ति-केन्द्रण में बेरोकटोक हो जाती है । अत: विकासशील राष्ट्रों में कार्यपालिकाएं अधिकतर विशेष व्यक्तित्व-उन्मुखी बन गयी हैं ।

9. भ्रष्टाचार:

तीसरी दुनिया के देशों में भ्रष्टाचार की आम शिकायत है । जहां संयुक्त राज्य अमरीका में 90% कर वसूल कर लिए जाते हैं वहां इन देशों में कर वसूली 50% से कम होती है । इन देशों में विकास कार्य सरकारी कोष पर निर्भर करता है और वंचना से प्रभावित होता है । राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर भी भ्रष्टाचार इन देशों में खूब फैला हुआ है ।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत व पाकिस्तान सहित दक्षिण एशिया क्षेत्र विश्व का भ्रष्टतम एवं निकृष्टतम (Poorly) प्रशासित क्षेत्र है । अकेले पाकिस्तान में प्रतिवर्ष 100 अरब रुपए से अधिक की राशि भ्रष्टाचार में लिप्त होती है जो कि वहां के सकल घरेलू उत्पाद का 5 प्रतिशत है ।

भारत के बारे में की गई एक टिप्पणी के अनुसार मुम्बई में एक भवन के निर्माण के लिए विभिन्न विभागों से कम-से-कम 47 किस्म की स्वीकृतियां लेने की आवश्यकता पड़ती है । इसी प्रकार एक लघु उद्यमी को प्रति माह 36 विभिन्न विभागीय इंस्पेक्टरों से निपटना पड़ता है ।

10. विलासितापूर्ण खर्चे:

तीसरी दुनिया के देशों में अभिजन वर्ग अनापशनाप खर्च करता है । जो धन विकास के कार्य में खर्च होना चाहिए उसे राजनीतिक और प्रशासनिक अभिजन अपने भोग-विलास के लिए खर्च कर देता है ।

11. सैन्य-सामग्री पर खर्च:

सेना और सैन्य-सामग्री पर भी तीसरी दुनिया के देश काफी धन अपव्यय करते हैं । 1964-1973 में विकासशील देशों ने 388 बिलियन डॉलर का सैनिक साज-सामान खरीदा । स्टॉकहोम इन्टरनेशनल पीस रिसर्च इन्स्टीट्यूट की मार्च, 2014 में जारी रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 2009-13 के बीच हथियारों के सबसे बडे आयातक देश क्रमश: भारत, चीन, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश हैं ।

सन्दर्भित अवधि में शस्त्रों के कुल निर्यात में 29% योगदान अमरीका का 27% योगदान रूस का, 7% योगदान जर्मनी का, 6% योगदान चीन का तथा 5% योगदान फ्रांस का रहा है । तीसरी दुनिया को जो धन रोटी पर खर्च करना चाहिए उसे बन्दूक पर खर्च कर दिया जाता है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किए गए अध्ययन में विकासशील देशों में व्यापक निर्धनता, बेरोजगारी तथा आंशिक बेरोजगारी, आर्थिक वृद्धि की असन्तोषजनक दर काम की तलाश में गांवों से बड़ी संख्या में लोगों का शहरों की ओर पलायन के कारण विकास की असंगत नीति अपनाना, निरक्षरता, सरकार की

उदासीनता, घटती हुई विदेशी सहायता तथा विश्व के विकसित देशों का असहयोगपूर्ण रवैया तथा व्यापार सम्बन्धी बाधाएं खड़ी करना बताया गया है ।

कई विकासशील देशों में बेरोजगारी की संख्या या उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण संख्या उन लोगों की है जो काम करते हैं लेकिन उनकी आय इतनी कम है कि वे हमेशा गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं । तीसरे विश्व के विकासशील देशों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां विकसित देशों की तुलना में नितान्त भिन्न हैं । इन देशों में बेरोजगारी तथा आशिक बेरोजगारी बहुत अधिक है ।

अधिकांश लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन गुजारते हैं । नौकरी की तलाश में कृषि क्षेत्र से सम्बद्ध लोगों की संख्या बराबर बढ़ती जाती है । सार्वजनिक क्षेत्र में उद्यमों की प्रधानता होती है जिनमें रोजगार के अवसरों में वृद्धि की सम्भावना बहुत कम होती है ।

इन देशों की जनसंख्या लगातार बहुत तेजी के साथ बढ़ती जाती है । प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम होती है तथा उसमें भी बहुत अधिक असमानता होती है । श्रमिक संघ बहुत छोटे तथा कमजोर होते हैं और वे राजनीतिक क्षेत्र की गतिविधियों से प्रभावित होते हैं ।

एक अध्ययन के अनुसार पिछले बीस वर्षों में तीसरी दुनिया को सम्पन्न देशों ने लगभग 235 अरब रुपए की आर्थिक सहायता दी । पर इसी काल में 3,800 अरब रुपए की फौजी सहायता दी । इस सहायता का नतीजा यह हुआ कि 1946 में रूस द्वारा हंगरी पर हमले को छोड़कर बाकी सभी युद्ध तीसरी दुनिया में हुए हैं । इन युद्धों में 1 करोड़ 63 लाख लोग हताहत हुए । यह संख्या द्वितीय विश्व-युद्ध में मारे गए लोगों की आधी तो होगी ही ।

तीसरे विश्व के देशों में विविधता:

रोजेन तथा जोन्स ने लिखा है कि तीसरे विश्व के देशों में कई क्षेत्रों में विविधता दिखायी पड़ती है जो इस प्रकार है:

1. संसाधनों के क्षेत्र में :-

प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से तीसरी दुनिया के देशों में काफी अधिक भिन्नता पायी जाती है । उदाहरण के लिए, सूडान के पास विकास हेतु संसाधन काफी कम हैं जबकि नाइजीरिया के पास प्राकृतिक साधनों की भरमार है ।

2. जनसंख्या की दृष्टि से :-

जनसंख्या की दृष्टि से भी तीसरी दुनिया के देशों में काफी अन्तर पाया जाता है । कुछ राज्यों में जनसंख्या का घनत्व काफी अधिक है, जैसे जावा (इण्डोनेशिया) में संयुक्त राज्य अमरीका की एक-तिहाई जनसंख्या पायी जाती है, जबकि तेल उत्पादक देश लीबिया में जनसंख्या काफी कम है । कुछ देशों में शहरी जनसंख्या काफी है जबकि अन्य देशों में अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है । कुछ देश भूमि की दृष्टि से काफी बड़े हैं, जैसे- ब्राजील और भारत जबकि अल साल्वाडोर, लेबनान, आदि छोटे देश हैं ।

3. जातीय दृष्टि से :-

तीसरी दुनिया के देश जातीय समूहों की दृष्टि से भी एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं । चिली जैसे कुछ देशों में समरूप समाज (Homogeneous Populations) पाए जाते हैं जबकि अन्य देशों में दो-तीन जातीय समूह (ethnic groups) पाए जाते हैं और उनमें काफी मतभेद (Conflict) पाए जाते हैं । उदाहरण के लिए- नाइजीरिया में आइबोज तथा हाउसास एवं योरीबा में जो संघर्ष चला उसमें गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी । भारत में भाषा, धर्म और जातिगत विविधताएं पायी जाती हैं ।

4. राजनीतिक विरासत :-

तीसरी दुनिया के राज्यों के राजनीतिक इतिहास में भिन्नता पायी जाती है । कुछ देश जो अभी तक भी (जैसे, मोरक्को, केन्या) उपनिवेश थे जबकि कुछ देशों पर कभी विदेशी प्रभुत्व स्थापित नहीं हो सका । (जैसे- थाईलैण्ड) । कुछ देश तो काफी पुराने हैं और उनका राजनीतिक अस्तित्व अमरीका से भी पुराना है (जैसे- ईरान)। कुछ देश तो उपनिवेशवादी शक्तियों की उपज हैं (जैसे- नाइजीरिया) और कुछ देश भूतपूर्व पृथक् राज्यों को मिलाकर अभी-अभी संघ के रूप में आए हैं (जैसे- मलेशिया) ।

5. आधुनिक और पारम्परिक संस्कृति:-

तीसरी दुनिया के कुछ देशों में आज भी प्राचीन परम्पराएं विद्यमान हैं, राजनीतिक चेतना का अभाव है और वे पुरातन ग्रामीण, धार्मिक समस्याओं से जूझ रहे हैं । कुछ देशों में परम्परागत अवस्था को आधुनिक अभिजन (Modernized Elite) द्वारा चुनौती दी जा रही है, शासन में जन-सहभागिता में वृद्धि हो रही है और पुरातन समाज व्यवस्था ढह रही है। साक्षरता का प्रतिशत विकासशील देशों में काफी भिन्न है ।

6. शासन सम्बन्धी विभिन्नता :-

तीसरी दुनिया के देशों में कहीं पर पारम्परिक अभिजनीय शासन , कहीं पर राजतन्त्र , कहीं पर निर्वाचित सरकारें , कहीं पर पश्चिमी प्रतिमान की सरकारें तथा कहीं पर सैनिक शासन पाया जाता है ।

7. आर्थिक व्यवस्था :-

तीसरे विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था में काफी अन्तर पाया जाता है । कुछ देशों की अर्थव्यवस्था जैसे, चिली पूर्ण रूप से अपने आयात-निर्यात पर निर्भर करती है । कुछ देशों के लिए विदेशी व्यापार जैसे- भारत उतना महत्वपूर्ण नहीं है; कुछ देशों में लोगों की आय में कॉफी अन्तर पाया जाता है जैसे- सऊदी अरेबिया; कुछ देशों में समाज पूर्णतया कृषि पर निर्भर है जैसे, श्रीलंका; कुछ देशों का समाज मोटे रूप में औद्योगिक है जैसे- दक्षिण कोरिया; कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में गतिरोध आ गया है जैसे- अफगानिस्तान; कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में भारी वृद्धि हो रही है जैसे- ब्राजील; कुछ देशों की अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी तत्व मौजूद हैं जैसे- अर्जेण्टाइना, तो कुछ देशों की अर्थव्यवस्था समाजवादी ढांचे पर आधारित है जैसे- वियतनाम।